भास्वती

प्रथमो भागः

एकादशवर्गीय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

(केन्द्रिकपाठ्यक्रमः)

11075

भास्वती

प्रथमो भागः

एकादशवर्गाय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

(केन्द्रिकपाठ्यक्रमः)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

2022-23

11075 – भास्वती (प्रथमो भागः)
कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

ISBN 81-7450-471-0

प्रथम संस्करण
जनवरी 2006 माघ 1927

पुनर्मुद्रण
जनवरी 2007 पौष 1928
दिसंबर 2007 आश्विन 1929
जनवरी 2008 पौष 1930
दिसंबर 2009 पौष 1931
अप्रैल 2019 चैत्र 1941
अप्रैल 2021 चैत्र 1943 (NTR)

PD NTR RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् , 2006

₹ 60.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा ....

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *अनूप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक (प्रभारी) : *विपिन दिवान*
सहायक संपादक : *एम. लाल*
उत्पादन उत्पादन अधिकारी : ....

चित्रांकन
प्रदीप नायक

आवरण
आलोक हरि

पुरोवाक्

2005 ईस्वीयायां राष्ट्रिय-पाठ्यचर्या-रूपरेखायाम् अनुशंसितं यत् छात्राणां विद्यालयजीवनं विद्यालयेतरजीवनेन सह योजनीयम्। सिद्धान्तोऽयं पुस्तकीय-ज्ञानस्य तस्याः परम्परायाः पृथक् वर्तते, यस्याः प्रभावात् अस्माकं शिक्षाव्यवस्था इदानीं यावत् विद्यालयस्य परिवारस्य समुदायस्य च मध्ये अन्तरालं पोषयति। राष्ट्रियपाठ्यचर्यावलम्बितानि पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तकानि अस्य मूलभावस्य व्यवहारदिशि प्रयत्न एव। प्रयासेऽस्मिन् विषयाणां मध्ये स्थितायाः भित्तेः निवारणं ज्ञानार्थं रटनप्रवृत्तेश्च शिथिलीकरणमपि सम्मिलितं वर्तते। आशास्महे यत् प्रयासोऽयं 1986 ईस्वीयां राष्ट्रिय-शिक्षा-नीतौ अनुशंसितायाः बालकेन्द्रितशिक्षाव्यवस्थायाः विकासाय भविष्यति।

प्रयत्नस्यास्य साफल्यं विद्यालयानां प्राचार्याणाम् अध्यापकानाञ्च तेषु प्रयासेषु निर्भरं यत्र ते सर्वानपि छात्रान् स्वानुभूत्या ज्ञानमर्जयितुं, कल्पनाशीलक्रियाः विधातुं, प्रश्नान् प्रष्टुं च प्रोत्साहयन्ति। अस्माभिः अवश्यमेव स्वीकरणीयं यत् स्थानं, समयः, स्वातन्त्र्यं च यदि दीयेत, तर्हि शिशवः वयस्कैः प्रदत्तेन ज्ञानेन संयुज्य नूतनं ज्ञानं सृजन्ति। परीक्षायाः आधारः निर्धारित-पाठ्यपुस्तकमेव इति विश्वासः ज्ञानार्जनस्य विविधसाधनानां स्रोतसां च अनादरस्य कारणेषु मुख्यतमः। शिशुषु सर्जनशक्तेः कार्यारम्भप्रवृत्तेश्च आधानं तदैव सम्भवेत् यदा वयं तान् शिशून् शिक्षणप्रक्रियायाः प्रतिभागित्वेन स्वीकुर्याम, न तु निर्धारितज्ञानस्य ग्राहकत्वेन एव।

इमानि उद्देश्यानि विद्यालयस्य दैनिककार्यक्रमे कार्यपद्धतौ च परिवर्तनमपेक्षन्ते। यथा दैनिक-समय-सारण्यां परिवर्तनशीलत्वम् अपेक्षितं तथैव वार्षिककार्यक्रमाणां निर्वहणे तत्परता आवश्यकी येन शिक्षणार्थं

नियतेषु कालेषु वस्तुतः शिक्षणं भवेत्। शिक्षणस्य मूल्याङ्कनस्य च विधयः ज्ञापयिष्यन्ति यत् पाठ्यपुस्तकमिदं छात्राणां विद्यालयीय-जीवने आनन्दानुभूत्यर्थं कियत् प्रभावि वर्तते, न तु नीरसतायाः साधनम्। पाठ्यचर्याभारस्य निदानाय पाठ्यक्रमनिर्मातृभिः बालमनोविज्ञानदृष्ट्या अध्यापनाय उपलब्ध-कालदृष्ट्या च विभिन्नेषु स्तरेषु विषयज्ञानस्य पुनर्निर्धारणेन प्रयत्नो विहितः। पुस्तकमिदं छात्राणां कृते चिन्तनस्य, विस्मयस्य, लघुसमूहेषु वार्तायाः, कार्यानुभवादि- गतिविधीनां च कृते प्राचुर्येण अवसरं ददाति। पाठ्यपुस्तकस्यास्य विकासाय विशिष्टयोगदानाय राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषद् भाषापरामर्शदातृसमितेः अध्यक्षाणां प्रो. नामवरसिंहमहोदयानां, संस्कृतपाठ्यपुस्तकानां मुख्यपरामर्शकानां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिमहाभागानां, पाठ्यपुस्तकनिर्माणसमितेः सदस्यानाञ्च कृते हार्दिकीं कृतज्ञतां ज्ञापयति। पुस्तकस्यास्य विकासे नैके विशेषज्ञाः अनुभविनः शिक्षकाश्च योगदानं कृतवन्तः, तेषां संस्थाप्रमुखान् संस्थाश्च प्रति धन्यवादो व्याह्रियते। मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य माध्यमिकोच्चशिक्षाविभागेन प्रो. मृणालमिरी प्रो. जी. पी. देशपाण्डेमहोदयानाम् आध्यक्ष्ये सङ्घटितायाः राष्ट्रिय-पर्यवेक्षणसमितेः सदस्यान् प्रति तेषां बहुमूल्ययोगदानाय वयं विशेषेण कृतज्ञाः।

पाठ्यपुस्तकविकासक्रमे उन्नतस्तराय निरन्तरं प्रयत्नशीला परिषदियं पुस्तकमिदं छात्राणां कृते उपयुक्ततरं कर्तुं विशेषज्ञैः अनुभविभिः अध्यापकैश्च प्रेषितानां सत्परामर्शानां सदैव स्वागतं विधास्यति।

जनवरी 2019 निदेशकः

नवदेहली राष्ट्रियशैक्षिकानुसंधानप्रशिक्षणपरिषद्

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

राधावल्लभ त्रिपाठी, *अध्यक्ष,* संस्कृत विभाग, हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य

अनिता शर्मा, *पी.जी.टी.*, विवेकानन्द पब्लिक स्कूल, आनन्द विहार, दिल्ली

छविकृष्ण आर्य, *उपप्रधानाचार्य,* केन्द्रीय विद्यालय, सेकेण्ड शिफ्ट, एण्ड्र्यूज़ गंज, नयी दिल्ली

जगदीश सेमवाल, *निदेशक,* वी. वी. वी. आई. एस., एण्ड आई. एस. पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, पंजाब

दीप्ति त्रिपाठी, *अध्यक्ष,* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

पी.एन. झा, *पी.जी.टी.*, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, आदर्श नगर, दिल्ली

योगेश्वर दत्त शर्मा, *रीडर* (सेवानिवृत्त), हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

राजेन्द्र मिश्र, *पूर्व कुलपति,* सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

सरोज गुलाटी, *पी.जी.टी.,* कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल, अशोक विहार, फेज–III, दिल्ली

सुरेश चन्द्र शर्मा, *प्राचार्य,* राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, शक्ति नगर, दिल्ली

सदस्य एवं समन्वयक

कमलाकान्त मिश्र, *प्रोफ़ेसर,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् उन सभी विषय–विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं विभागीय सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है जिन्होंने इस पुस्तक के निर्माण में अपना सक्रिय योगदान दिया है।

परिषद् केशवचन्द्र दाश, *प्रोफ़ेसर,* हो. ना. वेङ्कटेश शर्मा (मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार के सुब्बण्ण के संस्कृत अनुवादक) प्रभृति आधुनिक साहित्यकारों की भी आभारी है, जिनकी कृतियों से प्रस्तुत पुस्तक में पाठ्य सामग्री संकलित की गई है।

पुस्तक की योजना–निर्माण से लेकर प्रकाशन पर्यन्त विविध कार्यों में यथासमय सक्रिय भूमिका निभाने के लिए संस्कृत पाठ्यपुस्तक समिति के *समन्वयक* व *पूर्व विभागाध्यक्ष,* कृष्ण चन्द्र त्रिपाठी, *प्रवाचक,* उनके विभागीय भाषा शिक्षा विभाग सहयोगी रणजित बेहेरा, *प्रवक्ता* तथा दयाशंकर तिवारी, *प्रोजेक्ट एसोसिएट* साधुवाद के पात्र हैं।

सत्र 2017–18 में पुस्तक के पुनरीक्षण कार्य के समन्वयन के लिए भाषा शिक्षा विभाग के के.सी.त्रिपाठी, *प्रोफ़ेसर,* जतीन्द्र मोहन मिश्र, *प्रोफ़ेसर,* संगीता शर्मा, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* को परिषद् साधुवाद करती है। पुनरीक्षण में अनेकविध सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए परिषद् पी.एन. शास्त्री, *प्रोफ़ेसर* एवं *कुलपति,* राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, रमेश कुमार पांडेय, *प्रोफ़ेसर* एवं *कुलपति,* श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, रमेश भारद्वाज, *प्रोफ़ेसर,* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, रंजना अरोड़ा, *प्रोफ़ेसर एवं* विभागाध्यक्ष, डी.सी.एस, एन.सी.ई.आर.टी., आभा झा, *पी.जी.टी.*, संस्कृत, गार्गी सर्वोदय कन्या विद्यालय, ग्रीनपार्क, नयी दिल्ली के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती है। पुस्तक पुनरीक्षण में अनेकविध सहयोग हेतु जगदीश चन्द्र काला, जे.पी.एफ., यासमीन अशरफ, जे.पी.एफ. एवं रेखा शर्मा, डी.टी.पी. ऑपरेटर (संविदा) भाषा शिक्षा विभाग, ममता गौड़ संपादक (संविदा), नेहा पाल, डी.टी.पी. ऑपरेटर (संविदा), प्रकाशन प्रभाग के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

भूमिका

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है, ऐसा पाश्चात्य एवं पौरस्त्य सभी विद्वान् मानते हैं। स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक ने ऋग्वेद की मैत्रायणी-संहिता में वर्णित वसन्त-सम्पात की ज्योतिषीय गणना की और यह सिद्ध किया कि ईसा से लगभग 6500 वर्ष पूर्व ऐसी खगोलीय स्थिति रही होगी।

जर्मनी के प्रख्यात ज्योतिर्विद् हरमन जैकोबी ने भी शतपथ ब्राह्मण में वर्णित कृत्तिका नक्षत्रों की स्थिति का अध्ययन कर, उसे ईसा से 4500 वर्ष प्राचीन सिद्ध किया था। तुर्किस्तान में स्थित बोगाजकोई टीले की खुदाई में प्राप्त, वैदिक देवों (इन्द्र, मित्र, वरुण तथा नासत्य) के कीलित नामाक्षर से युक्त शिलापट्ट का अध्ययन कर चेकोस्लावाकिया के प्राग विश्वविद्यालय के महान् पुरातत्त्वविद् प्रो. ह्राज्नी ने भी अपनी रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया था कि ईसा से प्रायः दो हज़ार वर्ष पूर्व एशिया माइनर क्षेत्र में वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा विद्यमान थी।

संस्कृत वाङ्मय का विकास वेद, वेदाङ्ग, आर्षकाव्य (रामायण तथा महाभारत) पुराण तथा अभिजात-साहित्य के क्रम से हुआ है। इसी के साथ पालि तथा प्राकृत भाषाएँ भी विकसित होती रही हैं। ईसा की प्रथम शती से चौथी शती के मध्य संस्कृत भाषा साहसी एवं स्वप्नदर्शी (महत्त्वाकांक्षी) भारतीय राजकुमारों तथा उनके निष्ठावान् अमात्यों एवं पुरोहितों के साथ प्रशान्त महासागरीय द्वीप-समूहों में भी पहुँची तथा उन द्वीपों की बोलियों के साथ समन्वित होकर उत्कृष्ट साहित्य की भाषा बनी। सुवर्णद्वीप (जावा तथा बाली), चम्पा (वियतनाम), कम्बुज (कम्बोडिया), कटाह द्वीप (केड्डाह, मलेशिया), श्याम

(थाईलैण्ड) तथा सुवर्णभूमि (म्यांमार) आदि द्वीपों में आज भी संस्कृत अथवा संस्कृतबहुल उन द्वीपों की स्थानीय भाषाओं में अपार मूल्यवान् साहित्य सुरक्षित मिलता है।

वैदिक-साहित्य सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है जो मन्त्रात्मक है। ये मन्त्र मुख्यतः तीन प्रकार के हैं - ऋक्, यजुष् तथा सामन्। जिन मन्त्रों में देवस्तुतियाँ संकलित हैं वे **ऋक्** कहे जाते हैं। इन ऋचाओं का वेद ही **ऋग्वेद** कहा जाता है। इस वेद में 10 मण्डल 85 अनुवाक् तथा 10580 ऋचायें हैं। यज्ञ-याग की प्रक्रिया जिनमें बताई गई है वे मन्त्र **यजुष्** कहे जाते हैं और **याजुष** मन्त्रों का संग्रह **यजुर्वेद** के नाम से विख्यात है। साम का अर्थ है- देवताओं को (संगीतात्मक माधुरी से) प्रसन्न करने वाले मन्त्र-*सामयति प्रीणयति देवान् इति साम*। इन्हीं साममन्त्रों का संग्रह **सामवेद** है।

कालान्तर में महर्षि अथर्वा एवं अंगिरा ने ऐसे अवशिष्ट मन्त्रों का भी एक पृथक् संकलन तैयार किया, जिनमें अनेक लोकोपयोगी विषयों का प्रतिपादन था जैसे-भैषज्य, विषापहार, प्रशासन, आभिचारिक कर्म आदि। यह वेद अपने संकलयिता के ही नाम पर **अथर्ववेद**, आथर्वण-संहिता अथवा अथर्वाङ्गिरस संहिता के नाम से विख्यात हुआ।

इस प्रकार वेद को 'त्रयी' अथवा वेदचतुष्टयी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। वेदों की भाषा अत्यन्त रहस्यमय है। यही कारण है कि विभिन्न सम्प्रदायों तथा दृष्टियों वाले आचार्यों ने वेदमन्त्रों का स्वाभीष्ट अर्थ किया है। यदि आचार्य सायण की दृष्टि इतिहासपरक है तो स्वामी दयानन्द की इतिहासाभावात्मक। इसी प्रकार कुछ आचार्य नैरुक्त दृष्टि के पोषक हैं तो कुछ प्रतीकात्मक दृष्टि के।

जो भी हो, परन्तु इसमें कोई संशय नहीं है कि वेद समस्त विद्याओं का मूलस्रोत हैं। प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाणों से भी कथमपि सिद्ध न होने वाले तथ्यों की भी सिद्धि वेद से ही संभव है-

प्रत्यक्षेणाऽनुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

वैदिक कविता का स्वर विश्वमंगलात्मक है। सांमनस्यसूक्त में अत्यन्त सरस लोकतांत्रिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। ऋषि

यह संकल्प व्यक्त करता है कि हम एक साथ चलें, एक जैसी वाणी बोलें, एक जैसा चिन्तन करें!

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥

वैदिक ऋषि समस्त इन्द्रियों की अक्षत सामर्थ्य के साथ सौ वर्ष जीने की आकांक्षा व्यक्त करता है तथा देवताओं से प्रार्थना करता है कि वे उसके आयुष्य को मध्यमार्ग में ही खण्डित न करें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा
यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति
मा नो मध्या रीरिषत आयुर्गन्तोः॥

इसी प्रकार अभयसूक्त में हमें सम्पूर्ण संसार से निर्भय रहने का संदेश दिया गया है। सारे संसार को स्वयं से भी निर्भय रहने की आश्वस्ति, वेदमन्त्रों में बार-बार दुहराई गयी है। यह कहा गया है कि हम मित्र की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को देखें-

''मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।''

वेदमन्त्रों में विश्वबन्धुत्व की भावना पर बल दिया गया है तथा अनेकता में भी एकता स्थापित की गयी है। सम्पूर्ण विश्व को ही आर्य बनाने (संस्कारसम्पन्न बनाने) का दृढ़ संकल्प व्यक्त किया गया है। वस्तुतः वैदिक कविता का फलक अत्यन्त विस्तृत है। उसमें प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य, सजीव बिम्बयोजनायें, कौटुम्बिक सुखोल्लास, सामाजिक उत्सव तथा राष्ट्रीय योग-क्षेम सब कुछ यथावसर, यथाप्रसंग वर्णित किया गया है।

परवर्ती युग में स्वतन्त्र रूप से विकसित होने वाले समस्त दर्शन एवं शास्त्र वेदमन्त्रों के ही गर्भ से अंकुरित दीखते हैं। एक ओर देवासुर-संग्राम के महानायक इन्द्र के असुर-विरोधी रणाभियानों में प्रतिरक्षाविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण मिलता है तो दूसरी ओर सूर्या-सोम के विवाह-प्रसंग में विवाह-संस्कार का मनोरम चित्रण।

द्यूतकरसूक्त में यदि वैदिकयुग की जनवादी चेतना का साफ–सुथरा वर्णन है तो वाक्सूक्त एवं शिवसंकल्पसूक्त में आध्यात्मिक चेतनाओं का चित्रण।

अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त, इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है जिसमें राष्ट्रदेवता की अवधारणा के दर्शन होते हैं। संभवतः सम्पूर्ण विश्ववाङ्मय में यह प्राचीनतम सन्दर्भ है जिसमें भूमि को वात्सल्यमयी जननी के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'

वेदों का वाङ्मय विशाल है। महाभाष्यकार पतंजलि (ई. पू. दूसरी शती) ने अपने महाभाष्य में ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया, जो सम्भवतः उस युग में उपलब्ध थीं। उनके जीवनकाल में तो गाँव–गाँव में काठक एवं कालापक शाखाएँ पढ़ाई जाती थीं (ग्रामे–ग्रामे काठकं कालापकं प्रोच्यते) परन्तु काल के क्रूर प्रवाह तथा विदेशी आक्रमणों ने ज्ञान–विज्ञान की उस विपुल राशि को विनष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप आज मात्र 21 वेद शाखाएँ ही उपलब्ध होती हैं।

वेदों के अनन्तर आर्षकाव्यों– रामायण एवं महाभारत का क्रम आता है। रामायण के आदि प्रणेता महर्षि वाल्मीकि हैं जिन्हें भारतीय परम्परा कथानायक राम का समसामयिक स्वीकार करती है। पौराणिक साक्ष्यों के अनुसार कथानायक राम वर्तमान मन्वन्तर के 24वें त्रेता एवं द्वापर युगों की सन्धिवेला में उत्पन्न हुए थे। वे अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र, राजर्षि विदेह जनक के जामाता तथा भूमिपुत्री सीता के पति थे। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है, क्योंकि उनके चरित्र में समस्त सामाजिक सम्बन्धों की अन्विति एवं चरितार्थता परिपूर्ण मर्यादा के साथ दीखती है।

रामायण में कुल छः काण्ड तथा 24000 श्लोक हैं। सातवाँ उत्तरकाण्ड, कथा की एकता की दृष्टि से विशृंखलित–सा है, अतएव प्रक्षिप्त भी माना जाता है। रामायण में पदबन्ध की मञ्जुलता के साथ अभिजात संस्कृत कविता का अनेकविध साहित्यिक सौन्दर्य दिखायी

पड़ता है। इस काव्य में प्रयुक्त भाषा सालंकार तो है परन्तु अलंकारों के दुर्वह भार से बोझिल नहीं है। भाषा में भावसंवेदना की गहराई देखते ही बनती है।

लालिमा से ओतप्रोत सन्ध्या तथा प्रकाशमान दिवस परस्पर आमने–सामने हैं (नायक–नायिका की तरह) परन्तु विधाता की गति का क्या कहना? दोनों फिर भी मिल नहीं पाते! दिन के जाने के बाद ही सन्ध्या उतर पाती है! इस प्राकृतिक दृश्य के सहारे नायक–नायिका के पूर्णसम्भव मिलन को भी विघ्नित दिखा कर कवि भवितव्यता का प्राबल्य अत्यन्त आलंकारिक ढंग से सिद्ध करता है।

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरस्सरः।
अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न समागमः।।

प्राची दिशा में उदित होते चन्द्र का वर्णन तो अपने सजीव बिम्बों के कारण अत्यन्त कमनीय प्रतीत होता है –

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ–
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः।।

रामकथा–नायक राम का चरित्र अपने अनुकरणीय आदर्शों के कारण सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया। राम मातृपितृभक्त, बन्धुनिष्ठ, शरणागतवत्सल, सत्यवाक्, महावीर, आर्तरक्षक, धर्मपालक, ऋतसत्य के रक्षक, दुष्टसंहारक तथा सर्वानुग्रही महामानव हैं। उनके इस लोकवन्द्य रूप को सैकड़ों भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के कवियों ने पूरी निष्ठा के साथ वर्णित किया। श्रीलंका में रामकेत्ति, थाईलैण्ड में रामकियेन, लाओस में फॉ लॉक–फॉ लॉम् (प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम), मलेशिया में हिकायत महाराजा राम तथा जावा–बाली में रामायणककविन् के नाम से रामकथा की रचना हुई जो आज भी उन द्वीपों की धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक चेतना का मूलाधार है।

महाभारत भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास की कृति है जो वेदसंहिता के त्रिधा व्यवस्थापक एवं पुराणों के भी रचनाकार माने जाते हैं। सौ लघुपर्वों तथा 18 बड़े पर्वों में विभक्त प्रायः लक्ष श्लोकात्मक यह

विशालग्रन्थ भारतीय इतिहास का प्रामाणिक स्रोत तो है ही, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, भूगोल, खगोल, ज्यौतिष, तन्त्र, गणित, शालिहोत्र, गजविद्या, आलेख्य, रत्नविज्ञान, शकुनविज्ञान तथा समस्त लोकपरम्पराओं की व्याख्या करने वाला प्रामाणिक दस्तावेज़ भी है। इसीलिये महाभारत की प्रशंसा में कहा गया है—

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।'

अर्थात् जो विषय इस ग्रन्थ में वर्णित है वही अन्यत्र भी है। परन्तु जो यहाँ वर्णित नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

महाभारत में कौरवों तथा पाण्डवों, जो मूलतः एक ही पिता की सन्तान थे, के धर्मयुद्ध का वर्णन है, जिसमें मात्र 18 दिनों के महासंग्राम में 18 अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई। इस भीषण युद्ध के बाद सम्पूर्ण धरित्री वीरों से रिक्त-सी हो गई। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की निष्पक्ष मध्यस्थता के बावजूद, कौरवप्रमुख दुर्योधन के हठ तथा राजा धृतराष्ट्र के विवेकहीन पुत्रमोह के कारण यह महाविनाश टल नहीं सका।

महाभारत केवल युद्ध की ही कथा नहीं है प्रत्युत अनेक विद्याशाखाओं का मूल उद्गम भी है। श्रीमद्भगवद्गीता, भीष्मस्तवराज तथा विष्णुसहस्रनाम जैसे परलोकसिद्धि-प्रवण ग्रन्थरत्न भी महाभारत के ही अंश हैं। धर्म के शाश्वत एवं चिरन्तन रूप के साथ ही साथ युगधर्म एवं आपद्धर्म का भी अद्भुत चित्रण महाभारत में हुआ है। युगधर्म अथवा आपद्धर्म का एक सन्दर्भ है—

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य -
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारी मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारस्साधुना प्रत्युपेयः।।

पुनश्च

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे
पञ्चामृतान्याहुरपातकानि।।

सच्चे पण्डित की प्रज्ञा पर महाभारत में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है–

शोकस्थानसहस्त्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

आर्षकाव्यों के साथ ही साथ पौराणिक वाङ्मय की भी प्रतिष्ठा हुई। भारतीय परम्परा में रामायण **आदिकाव्य** है तो महाभारत **इतिहास** तथा पुराण **धर्मग्रन्थ**। पुराणों के पाठ से धर्मसिद्धि मानी जाती है, क्योंकि इनमें ऐतिह्य-तत्त्व गौण तथा धर्मतत्त्व प्रधान है। वस्तुतः पुराणों की रचना का मूल उद्देश्य था वेदमन्त्रों के गूढातिगूढ अभिप्रायों की उपाख्यानादि के माध्यम से उपदेशपरक व्याख्या करना–

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

पुराणों की संख्या 18 है–मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, वामन, वाराह, वायु, विष्णु, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड, कूर्म तथा स्कन्दपुराण। निम्नश्लोक से इन महापुराणों का सांकेतिक परिचय मिल जाता है –

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापल्लिङ्गकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते॥

पुराणों में भारत राष्ट्र की अखण्डता और एकता का निरूपण बहुत प्रभावशाली रूप में बार-बार किया गया है तथा भारत की सन्ततियों में एकता का सन्देश दिया गया है। कुछ उदाहरण देखें–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥ (*विष्णुपुराण 2/3/1*)

समुद्र से जो उत्तरदिशा में है और हिमालय से दक्षिणदिशा में है, उस देश का नाम भारत है; और वहाँ के लोगों को भारती (भारतीय) कहते हैं।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः॥ (*विष्णुपुराण 2/3/22*)

हे महामुने! इस (सर्वश्रेष्ठ) जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि यह कर्मभूमि है। इसके अतिरिक्त सभी (देश) भोग-भूमियाँ हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥ (*विष्णुपुराण 2/3/24*)

यह सच है कि देवता (इस आशय के) गीत गाया करते हैं कि वे भाग्यशाली हैं जो स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बने हुए भारतदेश में, अपने देवत्व की समाप्ति पर पुनः मनुष्य बनकर जन्म लेते हैं।

पौराणिक कविता का साहित्यिक सौन्दर्य विलक्षण है। भागवत पुराण का वेणुगीत, गोपीगीत, भ्रमरगीत, ऐलगीत, रुद्रगीत आदि सन्दर्भ तो उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण हैं। कृष्ण के विरह में सन्तप्त उनकी राजमहिषियों की कुररी पक्षी के प्रति अभिव्यक्त, यह अन्यापदेशपरक उक्ति ललित अभिजात कविता का रूप प्रस्तुत करती है-

कुररि विलपसि, त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि! किञ्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन॥ (*भागवत. 20.90.15*)

श्रीमद्भागवत भारतीय दर्शन की ललित काव्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अनुपम है। हमारे ऋषियों की वाणी में सामाजिक समता और समान वितरण की व्यवस्था का सिद्धान्त भी यहाँ इस प्रकार व्यक्त हुआ है-

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

वस्तुतः रामायण-महाभारत (आर्षकाव्य) तथा पुराणों की भाषा **वैदिकभाषा** एवं **लोकभाषा** (पाणिनीय संस्कृत) के मध्यवर्ती सन्धि- काल की सूचक है। वेदभाषा की रहस्यमयता, बह्वर्थकता

तथा रूपात्मक शिथिलताओं ने तद्युगीन वैयाकरणों को भाषारूप स्थिर करने की प्रेरणा दी। आपिशलि, काशकृत्स्न, भागुरि, स्फोटायन तथा शाकल्यादि अनेक महर्षि इस कार्य में लगे थे परन्तु भाषापरिमार्जन का यह लक्ष्य पूर्ण हुआ महर्षि पाणिनि (ई. पू. सातवीं शती) की अष्टाध्यायी की रचना के साथ। मात्र चार हजार सूत्रों में पाणिनि ने विश्व की विशालतम भाषा का स्वरूप सदा के लिए स्थिर कर दिया। इस नई भाषा को विद्वानों ने **संस्कृत** कहा। आचार्य दण्डी ने भी इसी नाम की पुष्टि की–

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।

महर्षि पाणिनि स्वयमेव उद्भट वैयाकरण होने के साथ ही साथ रससिद्ध कवि भी थे। उन्होंने **जाम्बवतीविजय** नामक ललित महाकाव्य का प्रणयन किया, जिससे अनेक उद्धृत पद्य ग्रन्थों में यत्र-तत्र मिलते हैं। वर्षा का तो विलक्षण वर्णन करते हैं पाणिनि! काली रात कृष्णा गाय है और चन्द्रमा उसका बछड़ा, जो बादलों के वन में कहीं खो गया है। बच्चे को न देख पाने के कारण वत्सला गाय **घनगर्जन** के बहाने रँभा-रँभा कर उसे बुला रही है।

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं
गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं
तच्छर्बरी गौरिव हुङ्करोति॥

वररुचि (कात्यायन) अष्टाध्यायी के वार्तिककार हैं, जिनका समय ई. पू. चौथी शती है। तत्प्रणीत **स्वर्गारोहण** तथा व्याडि-प्रणीत लक्षश्लोकात्मक **संग्रहग्रन्थ** का उल्लेख भी पातञ्जल महाभाष्य में है। वासवदत्ता, भैमरथी तथा सुमनोत्तरा नामक कृतियों का भी उल्लेख महर्षि पतञ्जलि करते हैं। इस प्रकार लौकिक संस्कृत कविता की एक अविच्छिन्न परम्परा हमें मौर्ययुग तक विकसित दीखती है।

इसके अनन्तर ही अभिजात-संस्कृत वाङ्मय *(Classical Sanskrit Literature)* का अभ्युदय-काल आता है, जिसके प्रवर्तक

नायक मुख्यतः कविकुलगुरु कालिदास हैं। वस्तुतः कालिदास प्रणीत वाङ्मय ही परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्र (Sanskrit Rhetorics) की सर्जना का मूलाधार बना। काव्यशास्त्रियों ने बन्ध अथवा रचना की दृष्टि से साहित्य को त्रिधा व्यवस्थित किया – पद्य, गद्य तथा मिश्र अथवा चम्पूकाव्य!

काव्यानन्द की ग्राह्यता के आधार पर भी साहित्य को दो रूपों में व्यवस्थित किया गया–श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य। पद्य, गद्य तथा चम्पू आदि श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि उनका आनन्द मुख्यतः श्रवणेन्द्रिय–ग्राह्य होता है। दस प्रकार के रूपक तथा 18 प्रकार के उपरूपक, जिसे अभिनेय, रूप अथवा रूपक भी कहते हैं–दृश्य के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि इनका आनन्द मुख्यतः दर्शनेन्द्रिय (नेत्र) ग्राह्य होता है। रूपक दस प्रकार के होते हैं –

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

समन्वित रूप से विचार करने पर कालिदासोत्तर संस्कृत–साहित्य चार प्रमुख रूपों में विभक्त दीखता है –

1. **पद्य काव्य** (महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि)
2. **गद्य काव्य** (कथा एवं आख्यायिका आदि)
3. **चम्पू काव्य** (गद्य–पद्यमिश्रित कृतियाँ)
4. **दशरूपक** (सम्पूर्ण नाट्यवाङ्मय)

कालिदासयुग (ई. पू. प्रथम शती) से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शती ई.) तक, अथवा यह कहा जाय कि तब से आज तक संस्कृत साहित्य की चारों धारायें अविच्छिन्न गति से विकसित होती रही हैं।

पद्यवाङ्मय में मुख्यतः, मुक्तक–युग्मक–सन्दानितक–कलापक एवं कुलक के अनन्तर, महाकाव्य–खण्डकाव्य आते हैं। कालिदास को सुकुमारमार्गी कवि माना गया है। इस शैली की कविता में भाव–संवेदना की प्रधानता तथा भाषा–सज्जा की गौणता रहती है। कालिदास इस कला में निष्णात कवि हैं। उन्होंने व्यञ्जनावृत्ति के सहारे अल्पाल्प शब्दों से विपुल अर्थ का प्रकाशन किया है। इस प्रकार की कविता अत्यन्त मर्मस्पर्शी होती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥

इस कविता में कवि ने मनुष्य के मन की अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। वैभव–उल्लास के वातावरण में आदमी का बुझा–बुझा–सा रहना, दुःखवादी बना रहना निश्चय ही उसके पूर्वजन्म के निसर्ग को घोषित करता है।

कालिदास ने दो महाकाव्य कुमारसम्भवम् तथा रघुवंशम्, तीन नाटक–मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा दो खण्डकाव्य–ऋतुसंहारम् एवं मेघदूतम् का प्रणयन किया। कालिदासयुगीन अन्य कवियों में प्रमुख हैं– अश्वघोष, अभिनन्द, कुमारदास, भर्तृमेण्ठ, मातृदत्त आदि।

छठी शती ई. में विद्यमान महाकवि भारवि के साथ अलंकारमार्गी संस्कृतकविता का प्रारंभ हुआ जिसका उद्देश्य था अलंकारों एवं चित्रबन्धों द्वारा काव्य के भाषापक्ष का यथासंभव पोषण। रामायण, महाभारत तथा पुराणों के अत्यन्त संक्षिप्त कथासूत्रों को लेकर, कलात्मक विस्तार के साथ विशाल महाकाव्यों की सर्जना का दौर प्रारंभ हुआ। भारवि–प्रणीत किरातर्जुनीयम्, माघ–प्रणीत शिशुपालवधम्, रत्नाकरकृत हरविजयम्, श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम्, कविराजकृत राघवपाण्डवीयम् आदि कृतियाँ अलंकारमार्गी काव्यशैली से ही जुड़ी हैं।

गद्यरचना में कथा एवं आख्यायिका को विशेष कीर्ति मिली। कथा कल्पनाश्रित होती है तथा आख्यायिका इतिहासाश्रित। दण्डीकृत दशकुमारचरितम् तथा अवन्तिसुन्दरीकथा, सुबन्धुप्रणीत वासवदत्ता, बाणभट्टप्रणीत कादम्बरी, धनपालप्रणीत तिलकमंजरी, सोड्ढलकृत उदयसुन्दरीकथा संस्कृत की गद्यात्मक कथाकृतियाँ हैं। इसी प्रकार बाणभट्टकृत हर्षचरितम्, वामनभट्टबाणकृत वेमभूपालचरितम् तथा अम्बिकादत्तव्यासकृत शिवराजविजयम् प्रमुख आख्यायिकाएँ हैं। कथाकृतियों में कवियों ने अपने युग के समाज को बड़ी ईमानदारी के साथ प्रतिबिम्बित किया है।

बाणभट्ट इन गद्यकारों में शिरोरत्न हैं। उन्होंने अभिप्रायों की नूतनता, उत्कृष्ट पद्यबन्ध का आदान, कोमलश्लेष, स्फुट रसप्रतीति तथा निर्दोष पदबन्ध (भाषा) को ही अपनी गद्यशैली का आदर्श निश्चित किया–

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥

इन आदर्शों के पालन से बाण ने अप्रतिम गद्य की रचना की जिसके कारण उन्हें अक्षय कीर्ति मिली – **बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।**

पद्य एवं गद्य के अनन्तर नाट्यवाङ्मय का क्रम आता है। वस्तुतः समूची काव्यपरम्परा में नाट्य को विशिष्ट माना गया –

काव्येषु नाटकं रम्यम्।

नाट्य अथवा नाटक की रम्यता का कारण है उसके द्वारा दो–दो इन्द्रियों (श्रवणेन्द्रिय एवं दर्शनेन्द्रिय) का युगपत् आसेचन। नाटक में यह कार्य संभव होता है अभिनय के माध्यम से। कालिदास की नाट्यकृतियाँ संस्कृत नाट्यवाङ्मय का सर्वस्व हैं। विशेषतः उनकी अमर नाट्यकृति अभिज्ञानशाकुन्तलम्! पात्रों के चरित्रचित्रण, मर्यादा निर्वहण (Poetic Justice) नाटकीय–मोड़ो की सृष्टि, (Poetic Situations) में कालिदास अप्रतिम हैं। उनकी नाट्यभाषा भी माधुर्य, प्रसाद तथा लालित्य गुणों से सम्पन्न है।

कालिदास के बाद अश्वघोष, विशाखदत्त, दिङ्नाग, भट्टनारायण, भवभूति, हर्ष आदि का नाम संस्कृत नाट्यसाहित्य में उल्लेखनीय है। इनमें भवभूति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने तीन नाटकों की रचना की है– मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित। इनमें उत्तररामचरित सर्वश्रेष्ठ है। यह वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित है। इसमें करुण रस की अत्यन्त सुंदर एवं मार्मिक निष्पत्ति देखने योग्य है। भवभूति में यद्यपि कालिदास की–सी सरलता और सहजता नहीं है फिर भी नाट्यसाहित्य में उन्हें कालिदास के समान ही सम्मान मिलता है। आदर्श वैवाहिक जीवन के चित्रण में भवभूति पारंगत हैं। राम और सीता के कोमल एवं पवित्र प्रेम का चित्रण भी उत्तररामचरित की विशिष्टता है।

संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषता उनका सुखांत होना है। सम्पूर्ण नाटक में यद्यपि सुख और दु:ख का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है, तो भी उसका अंत सुखांत ही होता है। सुख के उपपादन के लिए ही नाटक में दु:ख का निष्पादन होता है। इसके पीछे भारतीय चिंतन ही मुख्य है। प्राचीन भारत के निवासी आशावादी थे। उनके अनुसार जीवन में दु:ख की परिणति सदैव सुख और परमानंद में होती है।

संस्कृत नाटकों में संवाद के लिए प्राय: गद्य का ही प्रयोग होता है परंतु रोचकता, प्रकृतिवर्णन, नीतिशिक्षा आदि के लिए पद्य के प्रयोग को महत्व दिया जाता है। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी संस्कृत नाटकों में मिलता है। सभी प्रकार के पात्र संस्कृत समझते तो हैं किंतु अपने-अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप संस्कृत या प्राकृत बोलते हैं। नायक के मित्र के रूप में विदूषक की कल्पना संस्कृत नाटकों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इन नाटकों में अभिनय संबंधी संकेत, यथा-**प्रकाशम्, स्वगतम्, जनान्तिकम्, सरोषम्, विहस्य** इत्यादि सूक्ष्मता के साथ दिए जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ नैतिकता और उच्च आदर्शों का जनमानस में संचार करना भी संस्कृत-नाटकों का एक लक्ष्य है। लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के पात्र इनमें होते हैं। प्रकृति-वर्णन संस्कृत-नाटकों की एक बड़ी विशेषता है।

प्रस्तुत संकलन की पृष्ठभूमि

संस्कृत के अखिल भारतीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर केन्द्रिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वैकल्पिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के लिए प्रस्तुत संकलन का संपादन किया गया है।

विद्यालयीय शिक्षा के लिए दिल्ली स्थित 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्' (एन. सी. ई. आर. टी) द्वारा आयोजित संगोष्ठी में उपस्थित अध्यापकों एवं विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा

समवेत रूप से ***राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005*** पर गहन विचार-विमर्श किया गया। इन लक्ष्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है-भारमुक्त शिक्षा। विद्वानों का अनुभव है कि पाठ्यग्रन्थों के दुरूह भार से बोझिल छात्र, एक बिन्दु पर पहुँच कर पाठ्यक्रम को भार अनुभव करने लगता है। पाठ्यक्रमों की विविधता, बहुलता तथा मात्राधिक्य-तीनों मिलकर छात्र की अध्ययन- अभिरुचि को प्रायः समाप्त ही कर देते हैं। अतः आवश्यक है कि छात्रों की अध्ययन-अभिरुचि को नित्य नवीन बनाने के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम को भारमुक्त किया जाये।

जब शिक्षा भारमुक्त होगी तो निश्चय ही वह स्वयमेव एक 'आनन्दप्रद अनुभूति' सिद्ध होगी। यह पाठ्यचर्या-2005 का दूसरा लक्ष्य है। आनन्द तभी प्राप्त होता है जब किसी कार्य में उद्वेग न हो, अरुचि न हो, थकान न हो। शिक्षा के भारमुक्त होने पर ये गुण स्वतः उद्भूत होंगे और तब छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रमों में आकृष्ट एवं अनुरक्त होगा। इस आनन्दवृद्धि के लिए पाठ्यक्रम में ऐसे ज्ञान-सन्दर्भों का समावेश किया जाना चाहिए जिनमें उदात्त जीवन मूल्य हों, घटना-वैचित्र्य के साथ ही साथ आधुनिक जनजीवन का प्रतिबिम्ब भी हो।

वस्तुतः शिक्षा एवं पाठ्यक्रम का यह पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत का वाङ्मय वेदों से प्रारम्भ होकर आधुनिक युग तक व्याप्त है। वस्तुतः यह वाङ्मय भारतवर्ष के पिछले पाँच हजार वर्षों का एक जीवन्त दस्तावेज़ है जिसमें राष्ट्र का इतिहास, भूगोल, दर्शन, संस्कृति, सामाजिक उथल-पुथल, नित्य परिवर्तनशील जनजीवन-सब कुछ विद्यमान है।

ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि प्राचीन ग्रन्थों से हम ऐसे ही अंश पाठ्यक्रम में समाविष्ट करें जिनमें आज का भी राष्ट्रीय एवं सामाजिक परिवेश समरस हो। श्रवण कुमार की मातृपितृभक्ति, हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा, वाल्मीकि-वर्णित ऋतुओं का शाश्वत सौन्दर्य तथा कथासरित्सागर, पञ्चतंत्र, हितोपदेश एवं पुरुषपरीक्षा आदि प्राचीन ग्रन्थों की शिक्षाप्रद कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। इनका सन्दर्भ सार्वकालिक है।

पाठ्यचर्या का तीसरा लक्ष्य भी यही निश्चित किया गया – जीवन के परिवेश से शिक्षा का घनिष्ठ संबंध। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकेगी जब संकलित पाठांशों एवं आधुनिक जीवनपरिवेश के बीच सेतु हो, अन्त:संबंध हों।

पाठ्यचर्या का चौथा लक्ष्य निश्चित किया गया – शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारी पाठ्यपुस्तकें सर्वथा निरवद्य हों, विवादमुक्त हों। संकलित पाठ राष्ट्रीय आदर्शों तथा संवैधानिक मान्यताओं के सर्वथा अनुकूल हों। पुरानी पाठ्यपुस्तकों में प्राय: 'मूलपाठ की रक्षा' के लोभवश उपर्युक्त तथ्यों की उपेक्षा की गई है। परन्तु आज का भारतीय समाज अत्यन्त संवेदनशील है। अत: यह ध्यान रखा ही जाना चाहिए कि किसी भी संकलित अंश से समाज के किसी भी वर्ग की भावना आहत न हो। पाठों से सर्वधर्म-समभाव, सर्वोदय तथा सामाजिक समानता आदि का समर्थन होना चाहिये। किसी भी वर्ग, जाति, समुदाय अथवा प्रवृत्ति की अवमानना नहीं होनी चाहिये और न ही किसी के प्रति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से कोई आक्षेप होना चाहिए। पाठ्यचर्या का अन्तिम लक्ष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर संस्कृत पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में, यह लक्ष्य है– छात्रों को चिन्तन के लिए प्रेरित करना। पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए जो छात्रों को स्वयं स्फूर्त बना सके। प्राय: शिक्षक छात्रों को 'निरुपाय' बनाता है यह कहकर कि 'कण्ठस्थ करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं'।

शब्दरूप एवं धातुरूप कण्ठस्थ करते-करते अधिकांश छात्र निराश, कुण्ठित एवं हतप्रभ होकर संस्कृताध्ययन से विरत हो जाते हैं। छात्रों में एक भ्रम सा व्याप्त हो जाता है कि संस्कृत में सब कुछ रटने से ही सिद्ध होगा। जबकि ऐसा कतई नहीं है। कौन-सी ऐसी भाषा है जिसमें छात्र महत्त्वपूर्ण अंशों को कण्ठस्थ नहीं करता? विद्या का कण्ठस्थ होना तो प्रशंसनीय बात है, इसकी निन्दा कैसी?

परन्तु संस्कृत भाषा में प्रवीण होने के लिए सब कुछ रट डालने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है तो केवल इस

बात की कि छात्र सर्वत्र 'अध्यापकाश्रित' ही न हो। वह स्वयं भी कुछ सोचना विचारना अथवा करना सीखे। किसी पाठ को पढ़कर वह इतना समर्थ हो जाये कि पाठाश्रित लघुप्रश्नों का उत्तर दे सके, किसी अंश का आशय बता सके, रिक्त स्थानों की पाठ्यांश के आधार पर पूर्ति कर सके, प्रकृति–प्रत्यय का समुचित मेलन कर सके तथा योग्यता–विस्तार के अन्यान्य मानकों को भी आत्मसात् कर सके।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृताध्यायी छात्र का संस्कृत के साथ नीर–क्षीर सम्बन्ध होना चाहिए न कि तिल–तण्डुलवत् संसृष्टि! यदि छात्र 'संस्कृतमय' नहीं हुआ, उसकी संस्कृत समझने, लिखने, बोलने की क्षमता विकसित नहीं हो पाई तो फिर संस्कृत पढ़ने का लाभ क्या हुआ? यह सब संभव है पाठ्यचर्या के उपर्युक्त लक्ष्यों को अपनाने से।

उपर्युक्त लक्ष्यों को चरितार्थ एवं अनुप्रयुक्त करने की दृष्टि से ही 'नवीन पाठ्यक्रम' की संकल्पना की गई तथा नये मानदण्डों के आधार पर छठी, नवीं, तथा ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों के लिए नई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया है। इन पुस्तकों के प्रमुख वैशिष्ट्य हैं—

क – प्राचीन ग्रन्थांशों के साथ ही साथ आधुनिक संस्कृत रचनाओं का भी समावेश।

ख – अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की विविध अनूदित (संस्कृत) रचनाओं का भी पाठ्यक्रम में समावेश।

ग – पाठ्यचर्या के विविध लक्ष्यों की पूर्ति हेतु नये अभ्यासप्रश्नों, टिप्पणियों एवं योग्यता विस्तार–उपायों का समावेश।

घ – शिक्षण–संकेतों का निर्देश।

पाठ्यचर्या के लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर सुधी प्राध्यापकों एवं विषय–विशेषज्ञों के समवेत प्रयास से निर्मित प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक निश्चित ही संस्कृताध्ययन के क्षेत्र में एक शुभारंभ है। यह पाठ्यक्रम संस्कृताधीती छात्रों में उन गुणों को विकसित करेगा जो पाठ्यचर्या के लक्ष्यरूप में विन्यस्त किये गये हैं।

प्रस्तुत संकलन में मङ्गलाचरण के अतिरिक्त कुल बारह पाठ संकलित हैं। मङ्गलाचरण के प्रथम मन्त्र में समूची सृष्टि की ईश्वरमयता का प्रतिपादन करते हुए, त्याग के माध्यम से ही भोग का उपदेश दिया गया है। दूसरा मङ्गलात्मक मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल में विद्यमान सौमनस्य सूक्त से आहृत है, जिसमें लोकतन्त्रात्मक चेतना की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि हमारा मन्त्र (विचार), मन (संकल्प) तथा समिति (निर्णय) समान होना चाहिए, क्योंकि विचारों की एकता, भोगों की समानता तथा समरसता में ही वास्तविक सुख है। मङ्गल-परम्परा के अन्त में शान्तिपाठ प्रस्तुत है जो यजुर्वेद के 36वें अध्याय से गृहीत है। इसमें द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, ओषधि, वनस्पति, विश्वेदेव तथा सर्वव्यापक ब्रह्म की शान्ति (आनुकूल्य) की कामना की गई है।

प्रथम पाठ **कुशलप्रशासनम्** वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड के सौवें सर्ग से संकलित है। इस पाठ में स्फटिकनिर्मल भ्रातृस्नेह के साथ प्रशासनिक सिद्धांतों का भी सुन्दर निदर्शन है। रामवनगमन से सन्तप्त भरत जब, पश्चात्ताप-विधुर भाव से उन्हें मनाने के लिए पुर-परिजन सहित चित्रकूट पहुँचते हैं तो उदारहृदय राघव उन्हें दौड़कर छाती से लगा लेते हैं। राम सत्यवेत्ता हैं, बन्धुप्रणयी हैं तथा परचित्तज्ञ हैं। वे जानते हैं कि उनके वन गमन प्रकरण में निश्छल भरत की कोई भूमिका नहीं है। फलतः वे भाई भरत को सन्तप्त देख स्वयं भी टूट-बिखर जाते हैं, फिर भी विवर्णवदन धूलिधूसरित, कृशकाय बन्धुरत्न भरत को सान्त्वना देते हैं। वे भरत के कुशल-प्रश्न के माध्यम से आदर्श प्रशासन की नीतियों को उपस्थापित करते हैं।

कुशलप्रश्न में मर्यादापुरुषोत्तम राम का विराट् व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है। वह जितेन्द्रिय, कुलीन, शूर, श्रुतवान् तथा वशंवद आमात्यों के विषय में, तथा स्वयं भरत की दैनन्दिन वृत्तियों के विषय में पूछते हैं। वस्तुतः राम द्वारा पूछे गए कुशल-क्षेम समाचारों में ही आदर्श मानवजीवन-चर्या प्रतिबिम्बित है।

द्वितीय पाठ **सौवर्णो नकुलः** महर्षि व्यास-प्रणीत शतसाहस्री संहिता महाभारत के आश्वमेधिक पर्व (अध्याय 92-93) से

संकलित किया गया है। इस पाठ में ऐश्वर्य-वैभव की तुलना में निरहंकार-निरभिमान दैन्यवृत्ति के महत्व को रेखांकित किया गया है।

महाभारत-युद्ध में विजयश्री प्राप्त करने के बाद महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध - यज्ञ सम्पन्न करते हैं। यज्ञ की समाप्ति होने पर एक नकुल, जिसका आधा शरीर सुवर्णमय था, यज्ञभूमि में आकर लोटने लगता है तथा मानववाणी में ऋत्विजों से कहने लगता है कि यह यज्ञ उस ब्राह्मण के सक्तुप्रस्थ यज्ञ के तुल्य नहीं है जिसमें सक्तुस्पर्श मात्र से मेरा आधा शरीर काञ्चनवर्ण हो गया था।

आश्चर्यचकित याज्ञिकों के सोत्कण्ठ पूछने पर नकुल एक ब्राह्मण के यज्ञ का वर्णन करता है जिसने पूर्ण सात्त्विकता निरहंकारता तथा वदान्यता-शरणागतवत्सलता का पालन करते हुए त्यागपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किया था।

सूक्तिसुधा नामक तृतीय पाठ में सदुपदेशपरक सुभाषितों का संग्रह किया गया है जो चाणक्यनीति तथा हितोपदेश से समुद्धृत हैं। सुभाषित ऐसे पद्य को कहते हैं जिसमें जीवनचर्या के किसी पक्ष विशेष को, उपदेशमुखेन उद्भासित किया जाता है। इन सुभाषित पद्यों में शाश्वत सत्य अथवा जीवनामृत-रसायनतत्त्व, अत्यन्त मार्मिक पदावली में अभिव्यक्त होता है, मनुष्य को कैसे देश में रहना चाहिए, कौन मनुष्य का सच्चे अर्थों में बन्धु होता है, सत्संगति का महत्त्व क्या है, मनस्वी व्यक्ति की जीवनचर्या कैसी होती है, मानवजीवन के त्याज्य दोष कौन-से हैं तथा जीवलोक के छह सुख कौन-कौन-से हैं - इन विषयों का संकलित सुभाषितों में रुचिकर प्रतिपादन किया गया है।

ऋतुचर्या शीर्षक चतुर्थ पाठ आयुर्वेद के प्रख्यात आकरग्रन्थ **चरकसंहिता** के छठे अध्याय से लिया गया है। यद्यपि ऋतुवर्णन के सन्दर्भ रामायण महाभारत तथा परवर्ती काव्यों में भी पूर्ण साहित्य-सौन्दर्य, कोमल कल्पना एवं जीवन बिम्ब के साथ वर्णित हैं। परन्तु चरक-वर्णित ऋतुचर्या का कुछ और ही विलक्षण महत्त्व है, क्योंकि आचार्यश्री ने ऋतुओं का वर्णन स्वास्थ्य एवं आरोग्य की दृष्टि से किया है।

किस ऋतु में कैसी दिनचर्या होनी चाहिए, कैसा अशन–पान तथा पथ्य होना चाहिए, इसका अत्यन्त सटीक वर्णन संकलित पद्यांशों में किया गया है जो आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है। हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् के वर्णनमात्र में आचार्य चरक उन ऋतुओं के सम्भाव्य रोगों से पाठकों को सावधान करते हुए, ग्राह्यचर्या का उपदेश देते हैं।

वीरः सर्वदमनः शीर्षक पञ्चम पाठ कविकुलगुरु कालिदास प्रणीत विश्वप्रसिद्ध अमर नाट्यकृति **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** के सप्तमाङ्क से संकलित किया गया है। इसमें दुष्यन्त एवं शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन का अत्यन्त पराक्रमपूर्ण निर्भय शैशव रोचक शैली में वर्णित किया गया है।

दुर्वासा शाप–व्यामूढ दुष्यन्त द्वारा भरे दरबार में अपमानित एवं तिरस्कृत उनकी पत्नी शकुन्तला, अपनी जन्मदात्री मेनका अप्सरा के प्रयत्न से हेमकूट पर्वत स्थित मारीचाश्रम में रहने लगती है जहाँ सर्वदमन का जन्म होता है।

देवासुरसंग्राम में देवराज इन्द्र के सहायतार्थ स्वर्गलोक पहुँचे दुष्यन्त विजयोपरान्त लौटते हुए महर्षि मारीच एवं देवमाता अदिति को प्रणाम अर्पित करने उनके आश्रम में आते हैं तथा वीर सर्वदमन को देखते हैं जो सिंहशावकों के दाँत गिनने का यत्न कर रहा है। उसे सिंही के क्रोध का भी भय नहीं। दुष्यन्त बच्चे का शौर्य–पराक्रम तथा निर्भयता देख विस्मित हो उठते हैं।

अन्ततः जब उन्हें ज्ञात होता है कि वीर सर्वदमन उन्हीं का पुत्र है तो वह आनन्दविह्वल हो उठते हैं तथा पुत्र एवं पत्नी से समन्वित हो महर्षि–दम्पती को प्रणाम करते हैं।

शुकशावकोदन्तः शीर्षक षष्ठ पाठ वश्यवाणीचक्रवर्ती महाकवि बाणभट्ट प्रणीत कादम्बरी–कथा के कथामुख भाग से संकलित है। विदिशानरेश शूद्रक के दरबार में एक दिन चाण्डालकन्या द्वारा, उपहार– रूप में राजा को अर्पित करने के लिए, एक जातिस्मर शुकशावक लाया जाता है जो अपनी प्रशस्ति के ही अनुकूल, दाहिना पंजा (आशीः मुद्रा में) ऊपर उठाकर, राजा की प्रशंसा में एक

अत्यन्त ललित एवं साभिप्राय 'आर्या' पढ़ता है जिसे सुनते ही विदिशानरेश विस्मित हो उठते हैं।

उत्कण्ठित एवं विस्मयविमुग्ध राजा के द्वारा परिचय पूछने पर शुकशावक वैशम्पायन, महर्षि जाबालि द्वारा सुनाई गई अपनी आत्मकथा को यथावत् प्रस्तुत करता है। करुणा एवं अनुकम्पा, कृतज्ञता एवं वशंवदता से ओतप्रोत, कौटुम्बिक स्नेह-वात्सल्य में अनुस्यूत शुकशावक की यह आत्मकथा हमें अश्रुविगलित बना देती है। जीवन की उच्चावच संवेदनाओं का अत्यन्त मार्मिक चित्रण इस गद्यांश में कवि ने किया है जो अप्रतिम है।

भव्यः सत्याग्रहाश्रमः शीर्षक सप्तम पाठ, विगत शताब्दी की विदुषी लेखिका तथा गांधीविचारधारा की समर्थ कवयित्री श्रीमती पण्डिता क्षमाराव-प्रणीत **सत्याग्रहगीता** के चतुर्थ अध्याय से लिया गया है। 1926 ई. में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, मोहनदास कर्मचन्द गांधी के भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का नेतृत्व संभालते ही स्वतंत्रता का संघर्ष तीव्र हो उठा था। गांधी जी ने अहमदाबाद के समीप साबरमती नदी के तट पर सत्याग्रह-आश्रम की स्थापना की जो उनके विचारों तथा कृत्यों का केन्द्र बन गया। यहीं से उन्होंने सत्य-अहिंसा, सत्याग्रह, तथा सविनय अवज्ञा आदि के महामन्त्रों का उद्घोष तथा कार्यान्वयन किया, जिससे हमें अन्ततः स्वतंत्रता प्राप्त हो सकी।

पण्डिता क्षमाराव ने उसी सत्याग्रह-आश्रम तथा अपनी आँखों देखी गतिविधियों का रोचक वर्णन प्रस्तुत पद्यांश में किया है। इस पाठ में महात्मा गांधी की विचारधारा का प्रांजल रूप पढ़ने को मिलता है।

पण्डिता क्षमाराव अर्वाचीन संस्कृत काव्यधारा के साहित्यकारों में अत्यन्त सम्मानित कवयित्री हैं जिनका लेखन पारम्परिक होने के साथ ही साथ, परम्परामुक्त भी रहा है। उन्होंने अपनी कृतियों में विधवाविवाह, यौतकविरोध तथा बालविवाह-विरोध जैसी नई समाजिक प्रवृत्तियों को भी निर्भयता के साथ चित्रित किया है।

सङ्गीतानुरागी सुब्बण्णः शीर्षक अष्टम पाठ मूलतः कन्नड़ के ज्ञानपीठपुरस्कार मण्डित यशस्वी साहित्यकार **मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य** की कन्नड़ भाषा में प्रणीत लघु उपन्यासिका (Novelette) सुब्बणः के संस्कृत रूपान्तर से लिया गया है।

सुब्बणः मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य-प्रणीत कन्नड़ भाषा का एक लघु उपन्यास है। वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य कन्नड़ लघुकथा परम्परा के जनक माने जाते हैं जिन्होंने बीसवीं शती ई. के द्वितीय दशक में सर्वप्रथम अपनी रचना प्रकाशित की। स्वभावतः वह जॉन ऑस्टिन तथा चार्ल्स डिकेंस सरीखे अंग्रेजी उपन्यासकारों के प्रशंसक रहे तथा उसी औपन्यासिक आदर्श पर कन्नड़ में रचना करते रहे।

सुब्बण्णः मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य का एक ऐसा लोकप्रिय तथा मर्मस्पर्शी उपन्यास है जिसमें मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार की सामाजिक बुराइयों तथा पारिवारिक उपेक्षाओं का विश्वसनीय चित्रण किया गया है। कथानायक सुब्बण्ण के पिता राजाश्रय प्राप्त एक श्रेष्ठ विद्वान् हैं, परन्तु बालक सुब्बण्ण की अभिरुचि पिता से भिन्न है। वह सङ्गीतानुरागी है। पिता-पुत्र का यह मनोद्वेष जब शिखरस्थ होता है तो असहिष्णु सुब्बण्ण अपनी पत्नी एवं बच्ची के साथ, एक दिन चुपचाप घर छोड़ देता है और कलकत्ता पहुँच जाता है। यद्यपि उसके कुछ वर्ष वहाँ सुख से बीतते हैं, परन्तु भाग्य की निष्ठुरता, पत्नी एवं बच्ची को छीनकर उसे निपट एकाकी बना देती है। अन्ततः कलकत्ता महानगर में जीवन से वितृष्ण एवं मोहभग्न होकर सुब्बण्ण, माता-पिता तथा सगे-सम्बन्धियों के चिरवियोग से सन्तप्त हुआ पुनः अपने गाँव लौटता है तथा गाँव के बच्चों को निःशुल्क सङ्गीत की शिक्षा देता, शान्तिपूर्वक मृत्यु का वरण करता है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से श्रीमण्डित मास्ति वेङ्कटेश की इस कालजयी कृति का संस्कृत अनुवाद विद्वान् एच्. एन्. वेङ्कटेश शर्मा शास्त्री ने किया है जो शिमोगा जनपद के होसहल्लीमथूर नामक गाँव में पैदा हुए तथा कर्नाटक राज्य के शिक्षाविभाग में पण्डित के रूप में हज़ारों लोगों को संस्कृत की शिक्षा देते रहे हैं। अखिल

कर्नाटक–संस्कृत परिषद् बंगलौर द्वारा यह लघु उपन्यास प्रथम बार 1993 ई. में प्रकाशित किया गया है।

नवम पाठ **वस्त्रविक्रयः** म. म. पं. मथुराप्रसाद दीक्षितकृत **भारतविजयनाटकम्** के प्रथम अंक से लिया गया है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक चरण में जिन श्रेष्ठ साहित्यकारों ने अपनी कृतियों से संस्कृत–वाङ्मय को समृद्ध किया उनमें पं. अम्बिकादत्त व्यास, हरिदास सिद्धान्तवागीश, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, म. म. पं. रामावतार शर्मा, पण्डिता क्षमाराव, वाई. महालिङ्ग शास्त्री तथा मूलशंकर माणिक्य लाल याज्ञिक आदि प्रमुख हैं।

म. म. पं. मथुराप्रसाद दीक्षित सोलन–नरेश (सम्प्रति हिमाचलप्रदेश का जनपद–विशेष) के सम्मानित राजकवि थे जिन्होंने ब्रिटिश शासनकाल में भी पूरी निर्भयता एवं निरंकुशता के साथ स्वाधीनता का समर्थन करने वाले **भारतविजय** नामक क्रान्तिकारी उत्प्रेरक नाटक का प्रणयन 1937 ई. में किया। इस नाट्यकृति की विलक्षण विशेषता यही है कि इसमें क्रान्तदर्शी कवि ने **भारत की स्वाधीनता–प्राप्ति** का चित्रण 1947 ई. से एक दशक पूर्व ही अपनी क्रान्त प्रतिभा के बल पर किया। चिरकाल तक यह रचना शासन द्वारा जब्त रही; स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही इसका प्रकाशन हो सका।

मुगल बादशाह शाहआलम से बंगाल और बिहार की मालगुजारी वसूलने का अधिकार प्राप्त कर गौराङ्ग अधिकारी प्रजा पर अत्याचार करने लगते हैं। जब भारतीय जुलाहे, परम्परानुसार अपना वस्त्र बेचने बाजार में आते हैं तो ये अंग्रेज अफसर, शाही फरमान दिखाकर सारा वस्त्र, अत्यन्त सस्ते दाम पर स्वयं खरीद लेते हैं तथा उन्हें सेठ–साहूकारों तक नहीं जाने देते । इस प्रकार भारतीय जुलाहों की सारी अर्थ–व्यवस्था नष्ट–भ्रष्ट हो जाती है तथा वे गरीबी की मार झेलने को विवश हो जाते हैं।

प्रस्तुत पाठ में इसी सन्दर्भ का मर्मस्पर्शी वर्णन नाट्यकार द्वारा किया गया है। वस्तुतः यह पाठ हमें भारतीय स्वाधीनता–संघर्ष की पृष्ठभूमि से परिचित कराता है।

यद्भूतहितं तत्सत्यम् नामक दशम पाठ मूलतः एक शिक्षाप्रद लघु कथा है। प्रस्तुत लघुकथा डॉ. केशवचन्द्र दाश के लघुकथासंग्रह **'एकदा'** से संकलित की गई है। श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी के न्यायदर्शनविभागाध्यक्ष बहुश्रुत विद्वान् आचार्य केशवचन्द्र दाश ने अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय को अपनी जनवादी कविताओं तथा कथोपन्यासकृतियों से समृद्ध बनाया है। डॉ. दाश की प्रमुख कृतियाँ हैं– महान राशिरेखा, शिखा, विसर्गः, पताका, अञ्जलिः दिशा–विदिशा, शीतलतृष्णा, प्रतिपद् आदि।

'एकदा' में डॉ. दाश–प्रणीत दस लघु कथाएँ संकलित हैं। ये कथाएँ पितामही द्वारा अपने नाती माधव तथा नातिन पुलोमजा को सुनाई जाती हैं जो कथा सुनाने की प्राचीन भारतीय ग्रामीण–पद्धति है। ये कथाएँ संक्षिप्त होती हुई भी अत्यन्त भावगर्भित, मर्मस्पर्शी एवं रुचिवर्धक हैं।

मूलतः **'सत्यम्'** शीर्षक से संकलित प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि 'जिससे लोकहित सिद्ध होता हो वही सत्य है।' गाँव के छोर पर स्थित पद्मिनी नामक पुष्करिणी के किनारे आश्रम में एक मुनि रहता था। वह ग्रामीणों तथा उनके पशुओं द्वारा पंकिल की गई पुष्करिणी की दीन–दशा देख अत्यन्त दुखी रहता था। वह निरन्तर यही सोचता रहता था कि इस बावली का उद्धार–संस्कार कैसे हो?

अकस्मात् एक सुवर्ण अवसर मुनि के हाथ लग ही गया। एक दिन गाँव वाले एक बच्चे को **'मिथ्याभाषी'** बताकर पीटने लगे। मुनि ने बीच–बचाव करते हुए बच्चे से पूछा – तुम झूठ कैसे बोलते हो? बच्चे ने कहा – जैसा पसन्द आता है, वैसा ही बोलता हूँ। मुनि ने पुनः पूछा – अच्छा तो इस पुष्करिणी के विषय में कुछ बोलो! बच्चे ने कहा इस पुष्करिणी के जल में एक विशाल मछली है। आओ भाइयो! देखो, देखो! वह कैसे खेल रही है।

मुनि के सिखाने–पढ़ाने से अगले दिन सवेरे बच्चा चिल्ला–चिल्लाकर वही बात गाँव वालों से कहने लगा और देखते ही देखते महामत्स्य को खोजने का प्रयास करने वाले ग्रामीणों ने तालाब का सारा कीचड़ बाहर फेंककर उसे निर्मल बना दिया।

तालाब के कीचड़ से किसानों के खेत अत्यन्त उपजाऊ बन गये। कीचड़ निकालने से तालाब गहरा भी हो गया और वर्षा आते ही निर्मल जल से लबालब भर उठा। तटवर्ती झुरमुटों के कटने तथा नया तटबन्ध बनाने से तालाब की शोभा भी बढ़ गई। तालाब की वह शोभा देख गाँव के बड़े-बूढ़ों ने नियम बना दिया कि अब आगे से जो कोई भी जल को दूषित करेगा वह दण्डित होगा।

मुनि ने गाँव वालों को समझाया कि जिस बच्चे को आप लोग मिथ्याभाषी कहते थे वह सच्चे अर्थों में सत्यवादी सिद्ध हुआ। क्योंकि उसके मिथ्याभाषण में भी लोककल्याण का बीज विद्यमान था और सत्य मात्र उसे ही नहीं कहते जो यथार्थरूप में बोला जाता है, बल्कि जो (आपाततः असत्य प्रतीत होता हो परन्तु) लोककल्याणकारी हो उसे भी सत्य ही कहते हैं।

'स मे प्रियः' शीर्षक पाठ व्यास विरचित महाभारत के भीष्म पर्व के प्रसिद्ध भगवद्गीता के द्वादश अध्याय **'भक्तियोग'** से उद्धृत है। इस अध्याय में अर्जुन का प्रश्न है कि कौन बड़ा योगी एवं भगवान् का प्रिय है, जो सगुण ईश्वर की उपासना करता है या जो अव्यक्त एवं निर्गुण की। उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं- जो मुझ में मन समर्पित कर अत्यन्त श्रद्धा से मेरी उपासना करते हैं, वे ही मुझे अधिक प्रिय हैं। अर्थात् ज्ञानी से त्यागी भक्त बडा योगी है। साथ ही वही भक्त भगवान् को प्रिय होता है, जो सभी प्राणियों से द्वेषरहित, मित्रतापूर्ण, करुणायुक्त, निरहंकार भावपूर्णक, दुःख एवं सुख में समभाव एवं क्षमाशील व्यवहार करता हो तथा सामाजिक एवं वैयक्तिक सन्तुलन रखते हुए ईश्वर में समर्पण का भाव रखता हो, वही भगवान् के लिए प्रिय होता है।

'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि' नामक पाठ पाणिनीय शिक्षा से संगृहीत है। शिक्षा नामक वेदाङ्ग का मुख्य विषय वर्णों का परिचय कराना है। इस पाठ में संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में कितने वर्ण, वर्ण का विभाजन, उच्चारण स्थान, प्रयत्न, उच्चारण प्रक्रिया, पाठकों के गुण आदि विषयों के साथ वेद के सभी अङ्गों का भी परिचय

प्रस्तुत है। इस पाठ से संस्कृत के शुद्ध उच्चारण का ज्ञान होता है जो छात्रों को संस्कृत भाषा में रुचि लेने में और दक्षता पाने में सहायक सिद्ध होगा।

भास्वती (प्रथम भाग) नामक प्रस्तुत पाठ्यग्रन्थ का निर्माण कक्षा ग्यारह (केन्द्रिक) के छात्रों को दृष्टि में रखकर किया गया है। स्वभावतः इस पाठ्यग्रन्थ को कक्षा ग्यारह (ऐच्छिक) के पाठ्यग्रन्थ की तुलना में सरल, रुचिकर, संक्षिप्त एवं आकर्षक होना चाहिए, क्योंकि यह पाठ्यग्रन्थ विशेष रूप से उन छात्रों के लिए है जो संस्कृत को **विषय** के रूप में न पढ़कर **भाषा** के रूप में पढ़ते हैं। अतः इस अन्तर को ही दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत पाठ्यग्रन्थ को भाषा–सौन्दर्य, भाषाप्रवाह, भाषाविकास एवं भाषा–सारल्य की दृष्टि से सुसज्जित करने का यावच्छक्य प्रयत्न विद्वानों द्वारा किया गया है।

वैदिक मङ्गल पद्यों के अनन्तर रामायण–महाभारत से, इसी दृष्टि से छात्रों को परिचित कराया गया है, ताकि वे परवर्ती समूचे संस्कृत–वाङ्मय के निष्यंदभूत आर्षकाव्यद्वय का महत्त्व जान सकें। शेष पाठों को भी इसी दृष्टि से चयनित किया गया है, ताकि छात्र भाषागत एवं शैलीगत भेदों से परिचित हो सकें। चाणक्य, चरक, कालिदास तथा बाणभट्ट संस्कृत भाषा के चार मानक हैं। एक नीतिकाव्य है तो दूसरा वैद्यक का ग्रन्थ। एक संवादबहुल नाट्यग्रन्थ है तो दूसरा ललित गद्य का। इस प्रकार चारों प्रकार के ग्रन्थ संस्कृत भाषा के चार भिन्न रूप प्रस्तुत करते हैं, जिसमें कालगत, विषयगत तथा शैलीगत भेद हैं। निश्चय ही इन पाठों के अध्ययन से छात्र संस्कृत की विविध भाषिक संरचना एवं समृद्धि से परिचित हो सकेंगे।

पाठ्यग्रन्थ के सप्तम से लेकर दशक पाठ में, में संस्कृत भाषा का अर्वाचीन स्वरूप उपन्यस्त किया गया है। वस्तुतः यह संस्कृत बीसवीं–इक्कीसवीं शती ई. की है। इसमें पदे–पदे नूतन शब्दावली अथवा स्वनिर्मित (Self coined) शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है। सुब्बण्ण शीर्षक पाठ में ही वायलिन (वाद्य–विशेष),

चिटिका (टिकट), पत्रक (Note), प्रणिधि-सन्देश (Draft) जैसे नये शब्दों का प्रयोग रचनाकार ने किया है।

पुस्तक के आरंभ में दी गई भूमिका द्वारा छात्रों को संस्कृत-साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास के संक्षिप्त इतिहास का परिचय करवाया गया है। इसके साथ-साथ निर्धारित पाठों के मूलग्रन्थ एवं उनसे सम्बन्धित साहित्यकारों का परिचयात्मक ज्ञान भी इसमें समाविष्ट है। पाठ के आरंभ में पाठ-सन्दर्भ दिया गया है जिसमें संकलित अंश का प्रसंग सरलता से छात्रों को बोधगम्य हो सके। कक्षा में छात्रों को सीखने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पाठों के अंत में विविध अभ्यास-प्रश्न भी दिये गये हैं।

प्रस्तुत संकलन की पाण्डुलिपि को तैयार करने के लिए समय-समय पर आयोजित कार्यगोष्ठियों में भाग लेने वाले जिन विषय-विशेषज्ञों एवं संस्कृत अध्यापकों का मार्गदर्शन तथा सहयोग सुलभ हुआ है सम्पादक उन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है। यद्यपि इस संकलन को यथासंभव छात्रोपयोगी एवं स्तर के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया है तथापि इसे छात्रों के लिए और अधिक उपयोगी बनाने के लिए अनुभवी संस्कृत अध्यापकों के बहुमूल्य सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

शिक्षकों से निवेदन

पाठ्यसामग्री जहाँ पुस्तक को लोकप्रिय बनाती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षक की भूमिका का भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान है। पाठ्यसामग्री और शिक्षक दोनों ही वे आधार-स्तम्भ हैं जो अध्यापन कला को सुचारु रूप से विकसित करते हैं। केवल शिक्षक की योग्यता छात्रों का सही दिशा-निर्देश नहीं कर सकती अगर पाठ्यसामग्री छात्रों के स्तरानुकूल न हो। शिक्षकों से अनुरोध है कि वे पाठ्यसामग्री के अध्यापन के समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दें—

1. समसामयिक विषय पर आधारित प्रथम पाठ में मन्त्रियों की नियुक्ति आदि विषयों से छात्रों को शासन व्यवस्था से परिचित करवाएँ।

अनुष्टुप् छन्द का लक्षण बताकर छात्रों को पाठ्यक्रम में निर्धारित छन्दों का परिचय कराया जाये। आदि कवि वाल्मीकि के जीवनवृत्त का परिचय देकर रामायण की विषयवस्तु से परिचित कराएँ।

2. महाभारत के सांस्कृतिक-मूल्यों के विषय में छात्रों को जानकारी दें।
3. जीवनोपयोगी सूक्तियों से युक्त तृतीय पाठ में चाणक्य और नारायण पण्डित द्वारा लिखे गये पद्यों के निहित महत्त्व को छात्रों को बताएँ। निवास कहाँ करना चाहिए? बन्धु कौन है? यह छात्रों को स्पष्ट करें। सत्सङ्गति का महत्व बताकर अन्य उदाहरणों के द्वारा छात्रों को भाव स्पष्ट करें। पुष्पगुच्छ के उदाहरण से मनस्वी व्यक्तियों के जीवनदर्शन को समझाएँ। परोपकार की भावना को श्लोकों द्वारा सुदृढ़ कराएँ। आलस्य को छोड़ने का संदेश देकर जीवलोक के छः सुखों से परिचित कराएँ।

   योग्यता विस्तार में दिये गये श्लोकों का अर्थ समझाकर पाठ में प्रदत्त श्लोकों का भाव साम्य स्पष्ट करें।
4. ऋतुचर्या पाठ में छात्रों को ऋतुओं का ज्ञान देते हुए शिक्षक छात्रों को अवगत करवाएँ कि प्रत्येक ऋतु में हमारे द्वारा क्या भक्ष्य और क्या अभक्ष्य है तथा उसकी उपयोगिता से छात्रों को परिचित कराएँ। प्रकृतिप्रदत्त इन वस्तुओं के प्रयोग के प्रति ध्यान दें।
5. कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक से संकलित इस पाठ का छात्रों से अभिनय कराएँ।
6. प्राचीन भारत के तपोवन की संस्कृति से छात्रों को परिचित कराएँ। वन्य जीवन तथा पर्यावरण का नाश करने वाली आखेट वृत्ति के प्रतिरोध में तपोवन किस प्रकार करुणा व संवेदना के द्वारा पर्यावरण की सहज भाव से रक्षा करते रहे हैं-इस तथ्य को रेखांकित करें।
7. गांधीवादी जीवन दर्शन से छात्रों का परिचय कराएँ। गांधी की आत्मकथा पढ़ने को उन्हें प्रेरित करें।

8. दक्षिण के कवि द्वारा अनूदित इस पाठ में सङ्गीत के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। छात्रों की अभिरुचि जिस विषयविशेष में हो उनको उसी ओर ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरणा दें।

   अभिभावकों को भी बच्चों के रुचि-विशेष की ओर ध्यान-आकर्षित कराने का प्रयास करें। इच्छित विषय में अध्ययन से छात्र जीवन में उच्च स्थान प्राप्त करेंगे।

9. पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित आधुनिक युग के प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय छात्रों को दें। **वस्त्रविक्रयः** नाटक के माध्यम से अंग्रेज़ों की दमननीति से छात्रों को अवगत कराएँ। प्रस्तुत नाटक के अभिनय का अभ्यास कक्षा में कराएँ।

10. प्राचीनकाल से चली आ रही दादा-दादी, नाना-नानी के मुख से सुनायी जाने वाली कथा-परिपाटी से छात्रों को परिचित कराएँ। जीवन में सत्य का महत्त्व बताकर पाठ का शीर्षक स्पष्ट करें। योग्यता विस्तार में दी गयी सूक्तियों द्वारा भावों को सुस्पष्ट करें।

11. छात्रों को भगवद्गीता में वर्णित कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान करा कर ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्तिमार्ग के विषय में सामान्य परिचय कराएँ तथा इस पाठ का मुख्य आशय यही है कि "वही भक्त ईश्वर का प्रिय है जो अपने सन्तुलित व्यवहार से समाज का प्रिय होता है", इस बात को स्पष्ट करें।

12. 'पाणिनीय शिक्षा' का ज्ञान केवल संस्कृत भाषा के लिए ही नहीं, अपितु भारत की अधिकांश भाषाओं के ज्ञान के लिए उपयोगी है। इस पाठ में स्थित कारिकाओं का केवल अर्थ बता देना यथेष्ट नहीं है, अपितु इनका प्रयोग संस्कृत एवं अन्य भाषा के उपयोग के साथ कराना आवश्यक है।

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठाङ्काः
पुरोवाक्		*v*
भूमिका		*ix*
	मङ्गलम्	1
प्रथमः पाठः	कुशलप्रशासनम्	3
द्वितीयः पाठः	सौवर्णो नकुलः	9
तृतीयः पाठः	सूक्तिसुधा	15
चतुर्थः पाठः	ऋतुचर्या	20
पञ्चमः पाठः	वीरः सर्वदमनः	26
षष्ठः पाठः	शुकशावकोदन्तः	32
सप्तमः पाठः	भव्यः सत्याग्रहाश्रमः	39
अष्टमः पाठः	सङ्गीतानुरागी सुब्बण्णः	45
नवमः पाठः	वस्त्रविक्रयः	51
दशमः पाठः	यद्भूतहितं तत्सत्यम्	57
एकादशः पाठः	स मे प्रियः	64
द्वादशः पाठः	अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि	70
	परिशिष्ट	77

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।